वेदान्त आश्रम एवं मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष - २५ **नवम्बर - २०२५** प्रकाशन - ११

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

नवम्बर २०२५

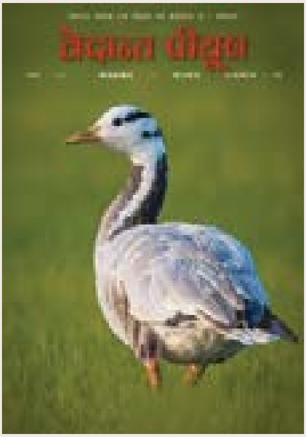

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

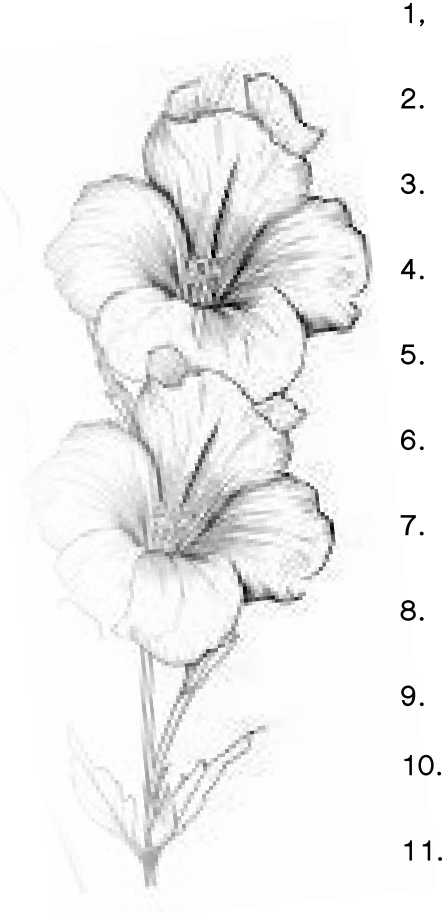

1,	प्रकाशक पृष्ठ	02
2.	श्लोक	05
3.	पू. गुरुजी का संदेश	06
4.	वाक्यवृत्ति	14
5.	गीता और मानवजीवन	19
6.	जीवन्मुक्त	24
7.	श्री कैकेयी चरित्र	28
8.	कथा-समर्पण की पराकाष्ठा	32
9.	आश्रम-मिशन समाचार	36
10.	आगामी कार्यक्रम	56
11.	इण्टरनेट समाचार	59
12.	लिन्क	60

नवम्बर 2025

आत्मबोध

श्लोक : ५२

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैः
अलिप्तो व्योमवन्मुनिः।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेत्
असक्तो वायुवच्चरेत॥

वह मुनि उपाधि में स्थित होकर भी आकाश की तरह उनके गुणों से अलिप्त रहता है, तथा सबकुछ जानते हुए भी अज्ञानी की तरह रहते हुए वायुवत् विचरण करता है।

सन्देश

पूज्य गुरुजी
स्वामी आत्मानन्दजी

कर्म अकर्म और विकर्म

भगवद्गीता के चौथे अध्याय में भगवान् कृष्ण बताते हैं कि यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कर्म, विकर्म और अकर्म का अर्थ क्या है? हम अपने जीवनभर कुछ न कुछ करते रहते हैं और यदि हमें यह नहीं पता कि कर्म आदि का वास्तविक अर्थ क्या है, तो हम अपने ही कर्मो के सूक्ष्म परिणाम व लाभ से वंचित रह जाएंगे।

कर्म का महत्व

कर्म के द्वारा हम सभी अपना जीवन चलाते हैं, अपने परिवार की सेवा करते हैं, व्यवसाय बढ़ाते हैं, समाज, देश व पूरे विश्व की भी सेवा करते हैं ये सभी लक्ष्य बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हमारे कर्म उत्पादक व सृजनात्मक हो। कर्म न केवल हमारे बाह्य जगत को बदलता है, बल्कि हमारे मन पर भी प्रभाव डालता है। कई बार हम अपनी मूलभूत आवश्यकताओं

कर्म, अकर्म और विकर्म

और इच्छाओं को पूरा करने के प्रयास में लग जाते हैं, किन्तु अधिकतर अन्त में एक इच्छापूर्ति के साथ अनेकों नई इच्छाएं जन्म ले लेती है। हमारा खाता हमेशा घाटे में ही रहता है। यदि इसमें कोई विकास हो रहा है, तो कोई समस्या नही, किन्तु तथ्य यह है कि हर इच्छा हमें और भी अधिक अभावग्रस्त, निराश और आश्रित बनाती है। इच्छाएं उन बुंदों की तरह है जो और अधिक भंवर उत्पन्न करती हैं। यदि हम अपनी इच्छाएं पूरी कर भी लें और यह सुनिश्चित कर लें कि हम अपनी पुरानी पीडाओं से सही अर्थों में मुक्त हो गए हैं और सच्चा संतोष प्राप्त कर लिया है, तो वास्तव में यह विकास का कदम होगा, किन्तु वस्तुस्थिति उससे अत्यन्त भिन्न है। हमारे मन की स्थिति अशांत और तनावपूर्ण है। यह सब बचपन से ही चलता आ रहा है, और हम अपने आपको सांत्वना देते हैं कि हमने कम से कम कुछ तो पूरा कर लिया। यह न केवल हमारी उत्पादकता, सम्बन्ध, परिवार को प्रभावित करता है, अपितु यह सभी तरह की बिमारियों को भी जन्म देता है। इसलिए हम सबको जीवन जीने का एक बेहतर तरीका जानने की आवश्यकता है।

कर्म, अकर्म और विकर्म

समग्र कर्म

भगवद् गीता इस समस्या का बहुत ही विस्तार से समाधान प्रस्तुत करती है। हमें अपने युद्ध लड़ने हैं, अपनी आकांक्षाए और जिम्मेदारियां पूरे करने हैं। कर्म से दूर नहीं जा सकते हैं, हम सभी को कर्म करना ही पड़ेगा, कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयास देने होंगे और श्रेष्ठता प्राप्त करनी होगी। किन्तु इस प्रक्रिया में हम अपने मन को और अधिक मलिन और बिमार नहीं बना सकते, न ही मानसिक समस्याओं को आमंत्रित कर सकते हैं। भगवान हमें यह भरोसा दिलाते हैं कि एक बेहतर और बुद्धिमान तरीका है जिससे कि हम बाहर और अन्दर दोनों ही परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। कल्पना किजीएं कि हम अपने कार्यक्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त कर रहे हैं और साथ ही मन को भी सुन्दर, बुद्धिमान और सूक्ष्म बना रहे हैं। यही तो गीता का उपदेश है। यदि मन अधिक विकृत और तनावपूर्ण हो जाए, तो चाहे कितनी भी प्रगति और समृद्धि हो, हम हार जाएंगे। तब कोई भी धन –सम्पत्ति कभी भी हमारी सहाय नहीं कर सकती।

कर्म, अकर्म और विकर्म

गीता का उपदेशः

प्रत्येक कर्म के दो परिणाम होते हैं – बाहर और अन्तः। जिसे दृष्टफल और अदृष्टफल कहा जाता है। दृष्टफल वह है जो हम बाहर देखते हैं, जब कि अदृष्टफल वह है जो हमारे मन पर प्रभाव डालता है, जैसे दबाव, तनाव, अहंकार, उत्साह या निरुत्साहिता। मूलरूप से हम ही इन अदृष्ट फलों को देखते और महसूस करते हैं। यदि आसपास के लोग सहानुभूति और संवेदना से युक्त हैं, तो वे बस आपके तनाव और अवसाद को ही देख सकते हैं, किन्तु अधिकतर लोग भी उसी तरह की स्थिति में होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम यही ज्ञान प्राप्त करें और हर समय सकारात्मक जीएं। दुनिया में कुछ लोग हैं, जिसका ग्राफ सदैव उपर रहता है और उनके मन को कोई भी बात प्रभावित नहीं कर पाती। यह सब हमारी प्रेरणा पर निर्भर करता है।

यदि हम ध्यान दें, तो पाएंगे कि हमारे कर्म में दो प्रकार की प्रेरणाएं होती हैं। एक, जिसमें हम कुछ 'चाहते' हैं और दूसरी, जिसमें हम कुछ 'देते' हैं। दोनों ही हमारे संकल्पपूर्वक, जानबुझकर किए गए कर्म हैं, किन्तु दोनों का मन पर प्रभाव बिल्कुल विपरीत है।

कर्म, अकर्म और विकर्म

प्रथम प्रकार की प्रेरणा ही हमारे मन को तनावपूर्ण बनाती है, जब कि दूसरी तरह की प्रेरणा का कर्म अधिक प्रेम और तृप्ति का अनुभव कराता है। यह एक महान खोज है। यदि हम अपनी इच्छाओं को दूसरों की सेवा में बदल सकते हैं, तो हमने इस युद्ध में जीत हासिल कर ली है। हम कर्म करते रहेंगे, किन्तु अब मुख्य परिवर्तन यह है कि अपनी इच्छाओं में सेवा को प्राथमिकता दें, और जैसे जैसे हम अपने कर्म करते रहेंगे, परिणाम पहले से बेहतर ही होगा। यह है गीता में वर्णित कर्म करने की कला।

कर्मः

कर्म का अर्थ है, भगवद् गीता और सभी शास्त्रों के उपदेशानुसार, कर्म करने की कला। इस कला में कुछ सोपान हैंः

१. हम अपने उपर बरसती कृपाओं को देखकर जीवन का आरम्भ करते हैं। हम पर देवताओं का कितना प्रेम व अनुग्रह है, यह देखते है।

२. हमें जीवन के सारे बोझ नहीं उठाने हैं, ट्रेन तो अपने आप आगे बढ़ रही है और अधिकांश बातें अपने आप ही संभल जाती हैं।

३. हमारी जिम्मेदारियां - हमारी इच्छाएं और प्रेम तय करते हैं।

हमें किसी एक क्षेत्र में विशेषता प्राप्त करनी चाहिए, न कि सब कुछ जानने का प्रयास।

४. अपनी प्रेम की पहचान कर, उसमें अपने सभी साधनों - शरीर, हृदय और बुद्धि का प्रयोग कर अपने कर्म को समग्रता से करें।

५. अब सबसे महत्वपूर्ण बात आती है। कर्म 'देने' के लिए करें, न कि कुछ 'लेने' के लिए। दिव्य शक्तियों का आवाहन करें, जो हमें प्रेम और कृतज्ञता से अनुगृहीत कर रही हैं, न कि अपनी अहं की संतुष्टि और स्वार्थ के लिए। इसे यज्ञभाव कहा जाता है। हम अपने सभी कर्मों को यज्ञ में अर्पित की जानेवाली आहुति की तरह समझें। ऐसा कर्म निश्चित ही बाह्य और आन्तरिक दोनों स्तर पर सकारात्मक परिणाम लाता है। बाह्यरूप से क्योंकि आप अपना सर्वश्रेष्ठ दे रहे हैं और आन्तरिक रूप से, क्योंकि आप तनावमुक्त और प्रेम में डूबे हुए हैं। यही है गीता और उपनिषद् द्वारा प्रतिपादित कर्म की कला।

विकर्मः

विकर्म नकारात्मक कर्म है, जो संदेह पैदा करता है कि हमारे बाहर के परिणाम सही है या नहीं, और जो सदैव बोझ बनता है। ऐसे में असफलता असहनीय होती है, यह मृत्यु के समान है; जीवन

तनावपूर्ण है। सफलता भी अपने साथ समस्याएं लाती है, जिनमें सबसे प्रमुख है अहंकार। इसलिए सफलता या विफलता दोनों ही समस्याएं हैं। ऐसे कर्म का अदृश्यपक्ष भी बहुत ही भयंकर हो सकता है। हम कुछ इच्छाएं करते हैं, और हमारी संचित इच्छाएं निरन्तर बढ़ती जाती हैं। यह जीवन जीने का सही तरीका नहीं है।

अकर्मः

अकर्म का अर्थ है उन प्रबुद्ध, जगे हुए ज्ञानवान का कर्म, जो अपने अनंत सत्य को जानते हैं। ऐसे प्रबुद्ध लोग जानते हैं कि यही दिव्य है, जो सभी की आत्मा है, परिपूर्ण और अनंत है। ऐसे लोगों के हर कर्म में प्रेम और पूर्णता प्रतिबिंबित होती है। उनमें कोई भेदभाव और खण्ड नहीं है। वे फिर भी कर्म करते हैं और वे करते हुए भी नहीं करते हैं। यह है आध्यात्मिक विकास की चरम अवस्था। सही कर्म अन्ततः हमें इस अकर्म की अवस्था तक ले जाता है।

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

वाक्यवृत्ति

स्वामिनी अमितानन्द

यस्य प्रसादादहमेव विष्णुः मयि-एव सर्व परिकल्पितं च।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं तस्यान्घ्रि पद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम्।।

श्लोक – २८

त्वमर्थमेव निश्चित्य
तदर्थं चिन्तयेत्पुनः।
अतद्व्यावृत्तिरूपेण
साक्षाद्विधिमुखेन च॥

त्वं पद के अर्थ का निश्चय करके अब तद् पद के अर्थ पर विचार करना चाहिए। उसे निषेध लक्षणा और स्वरूप लक्षणा के माध्यम से श्रुति ने जैसे प्रतिपादित किया है, उस प्रकार विचार करें।

वाक्य वृत्ति

आचार्य द्वारा रचित इस ग्रंथ में छांदोग्य उपनिषद् के प्रसिद्ध महावाक्य 'तत्त्वमसि' की व्याख्या की जा रही है, जिसका अर्थ होता है 'तुम वह-ईश्वर हो'। किसी भी वाक्य का अर्थ जानने के लिए उसमें प्रयुक्त पदों अर्थात् शब्दों का अर्थ भी जानना आवश्यक है। आरम्भ से लेकर अभी तक के श्लोको में आचार्य ने त्वं पद का अर्थ बताया। इन श्लोकों के माध्यम से यह निष्कर्ष निकाला गया कि 'हम सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा, समस्त उपाधियों से पृथक् एवं विलक्षण है।' अब आचार्य तत् पद का अर्थ बताना आरम्भ करते हैं।

आचार्य बताते हैं कि, एवं - इस प्रकार; त्वमर्थं निश्चित्य- त्वं शब्द के अर्थ को निर्धारित करने के बाद तदर्थं पुनः चिन्तयेत् - अर्थात् फिर से हम एक और अन्वेषण आरम्भ करते हैं, वह है तत् पद का अर्थ। उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है। परिभाषित

करने का अर्थ है, उसे संकुचित कर देना। इसलिए शास्त्र उसकी व्याख्या नहीं करते हुए उसे लक्षणाओं का प्रयोग करके उसका ज्ञान कराते हैं। इसके लिए प्रसिद्ध दो लक्षणाएं प्रयुक्त होती है। निषेध लक्षणा और विधेयात्मक लक्षणा। निषेध लक्षणा को ही यहां अतद्-व्यावृत्ति लक्षण बताया।

न तत् इति अतद् अर्थात् जो वह नहीं है, वह अतद् है। यहां जगत में जो कुछ भी तत् अर्थात् 'वह' या 'यह' की तरह जानते हैं, वह सब अनित्य, नश्वर, परिवर्तनशील, विकारी और जड़स्वरूप है। इसका यहां निषेध किया जा रहा है। अर्थात् न तद्- ब्रह्म वह नहीं है। जो हमारे लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष ज्ञान का विषय बनता है वह सब तद् अर्थात् यह या वह की श्रेणी में आता है। इसके बारे में यह निश्चय करें कि वह ब्रह्म नहीं है। उसे निषेध कहते है। जिसका भी निषेध किया वह हमारे लिए महत्वविहीन हो जाता है, उसके मिथ्यात्व का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार जो भी तद् की अवधि है, वहां तक यदि निषेध करते जाएं तो क्या शेष बचता है?

वाक्यवृत्ति

जब सबका निषेध कर दिया गया तो जो भी शेष बचता है, वही ब्रह्म है। किन्तु सबका निषेध कर देने पर शून्यता की मन में सम्भावना हो सकती है। यह सम्भव है कि शिष्य/साधक परं अवस्था को शून्य समझने लगे। ऐसी शून्यता की अवस्था में जगने से किसी प्रकार के पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं होती है। किन्तु उसका विपरीत प्रभाव यह होता है कि अब व्यवहार दुःखदायी, घूटन से युक्त प्रतीत होता है। जिसके फलस्वरूप व्यवहार से पलायन की मनोवृत्ति होती है। यह मुक्ति का पर्याय नहीं हो सकता। अतः ऐसी अवस्था इष्ट नहीं है। ब्रह्म कोई शून्यता की अवस्था नहीं है। अतः शास्त्र अन्य भी लक्षणा का आश्रय लेते हैं, जिसे कहा विधेयात्मक लक्षण।

यह सम्भावित प्रश्न हो सकता है कि यदि विधेयात्मक लक्षणा से भी बताया जा सकता है तो निषेध लक्षणा का प्रयोग पहले क्यों करना है? इसका समाधान यह है कि यदि पहले उसका विधान कर दिया तो किसी न किसी प्रकार की कल्पना का आश्रय लेकर उसमें उलझने की सम्भावना है। इसके परिहार हेतु यहां अन्त में विधिलक्षणा का प्रयोग भी किया जाता है।

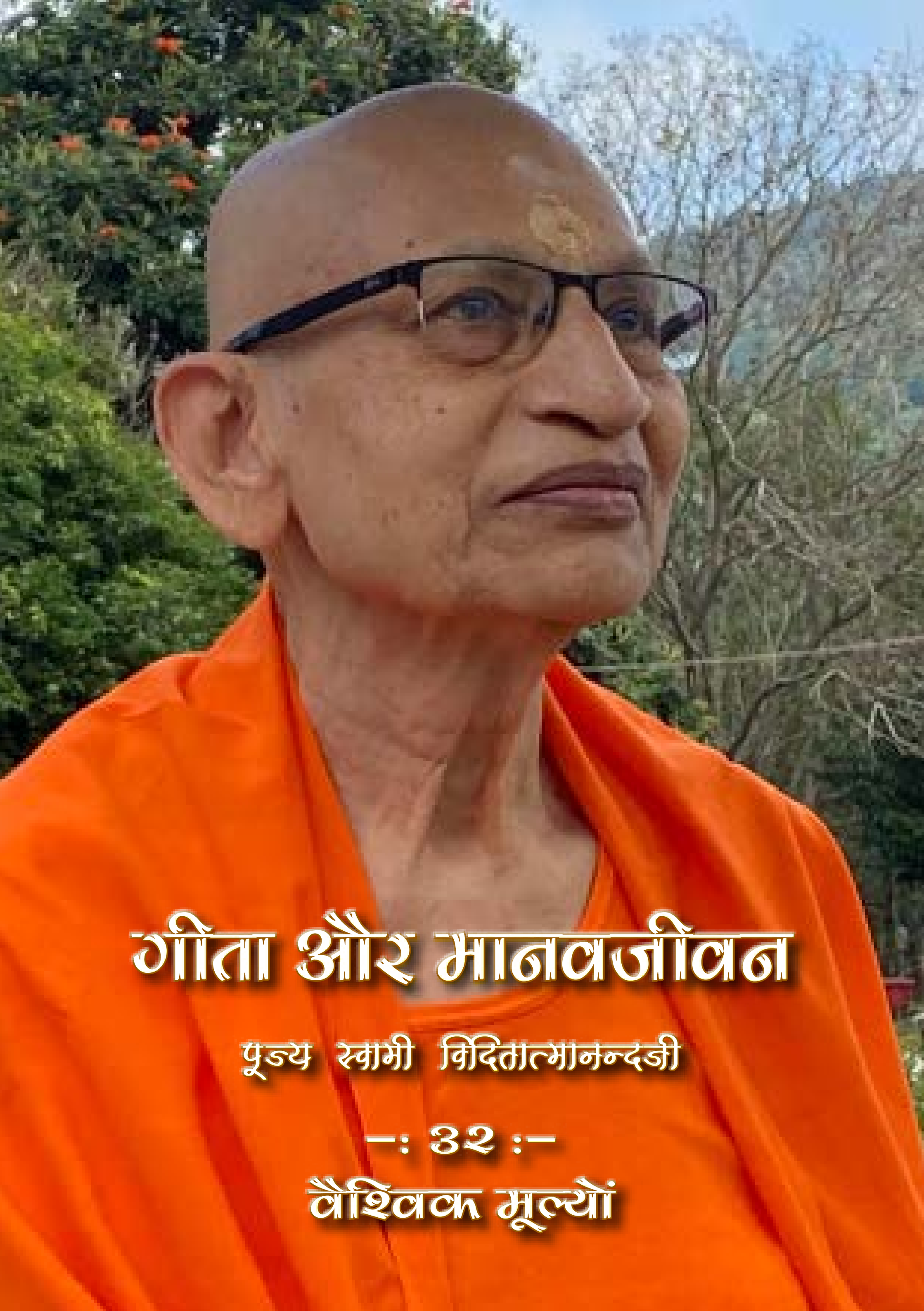

गीता और मानवजीवन

पूज्य स्वामी विदितात्मानन्दजी

-: ३२ :-

वैश्विक मूल्यों

गीता और मानवजीवन

सत्य बोलना चाहिए, किसीकी हिंसा नहीं करनी चाहिए। इमानदार रहना चाहिए - ऐसा थोड़ा-बहुत तो हम सब जानते है। किन्तु पैसे, प्रमोशन, प्रतिष्ठा इत्यादि से जो लाभ होता है, वह तो प्रत्यक्ष है, जब कि सत्य, अहिंसा या इमानदारी से क्या लाभ होता है, वह नहीं देख पाते है। क्योंकि उसका कोई भौतिक लाभ दीखाई नहीं देता है। तद्विपरीत हम देखते आए हैं कि सत्य, अहिंसा का पालन करनेवाले तो गंवाते है। उनको कोई प्रत्यक्ष लाभ दीखता नहीं है। और इसलिए मुझे जब तक अनुकूल होता है, तब तक अवश्य हम सत्य बोलेंगे। उसमें कोई मुश्किल नहीं है। किन्तु वास्तविक परीक्षा तो तब होती है कि जब सत्य बोलना हमारे प्रतिकूल हो। कहीं पर झूठ बोलने से कुछ पैसे बच जाते हो तो 'थोडा झूठ

गीता और मानवजीवन

बोलने में क्या हर्जा है?' ऐसा सोचकर हम ऐसा करने के लिए ललचाते है। उतने में तो आश्रम का एक कक्ष ही बन जाएगा!

इस प्रकार दो प्रकार के मूल्यों के मध्य में संघर्ष होने पर जिनसे प्रत्यक्ष लाभ मिलता हो उसकी ही जीत होगी और जिसमें प्रत्यक्ष लाभ नहीं हो रहा, उसकी हार होगी। सामान्यतः विपरीत मूल्यों के बीच संघर्ष हो तब सत्य, अहिंसा, इमानदारी का बलिदान दिया जाता है। अर्थात् अर्थ या काम की सिद्धि के लिए धर्म का ही परित्याग कर दिया जाता है।

अपने देश में आज इतना भ्रष्टाचार क्यों है? वर्षों पूर्व ऐसा नहीं था। लोग आज की अपेक्षा अधिक इमानदार थे। आज तो भ्रष्टाचार के कारण देश की दुर्दशा हो रही है। कितना-कितना भ्रष्टाचार फैला हुआ है! अपने बुझुर्गों के पास क्या अधिक था, जो आज अपने पास नहीं है? बल्कि उनसे अधिक सम्पन्नता है। तो क्या हम बेइमान है? ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। हम भी उनके जैसे ही मनुष्य है। फिर इन मूल्यों का इस समय खुले आम बलिदान दिया जा रहा है, ऐसा क्यों? क्योंकि सत्य,

गीता और मानवजीवन

अहिंसा, इमानदारी का क्या महत्व है, उसका हमें नहीं पता है। अर्थ और काम का क्या महत्व है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव व लाभ होने से सब जानते है। किन्तु धर्म क्या है और उसका क्या महत्व है, उसके बारे में नहीं जानने के कारण धर्म के साथ समझोता किया जाता है। यदि उसका महत्व समझ में आ जाए तो कोई धर्म का त्याग नहीं करेगा। किसी भी समय मनुष्य खुद को जिसमें अधिक लाभ होता है, उसका चयन करता है। जो वस्तु उसे अधिक मूल्यवान लगती है, उसको अपनाता है और जो मूल्यवान नहीं लगती है, उसे त्याग देता है। ऐसा नहीं हैं कि हम मूर्ख है या बेईमान है इसलिए धर्म का त्याग करते है।

इसलिए अज्ञान ही इन प्रश्नों का कारण है। मूल्यों का मूल्य नहीं जानने के कारण ही मूल्यों का भोग दे दिया जाता है और इसके लिए शिक्षा ही सबका एक मात्र उपाय है।

शिक्षा दो प्रकार से दी जाती है- १. उपदेश से २. आचरण से।

यद्यदाचरति श्रेष्ठः - श्रेष्ठ पुरुष, शिक्षक, नेता जिस प्रकार से आचरण करते है, उसी तरह से अन्य लोग भी उसका अनुसरण करते है। इसलिए हम ही मूल्यों का पालन करे तो हमारा अनुसरण

करनेवाले भी उसका पालन करेंगे। और हम मूल्यों को जीवन में महत्व देंगे तो अपने प्रति आदर रखनेवाले अन्य भी वैसा ही करेंगे।

आदर्श मूल्यों का उपदेश उपरांत उपदिष्ट मूल्यों पर आधारित आदर्श आचरण भी आवश्यक है।

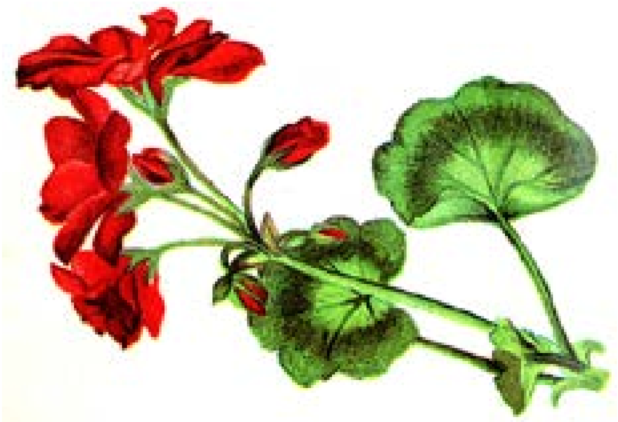

जीवन्मुक्त

— ६५ —

बदरीनाथ

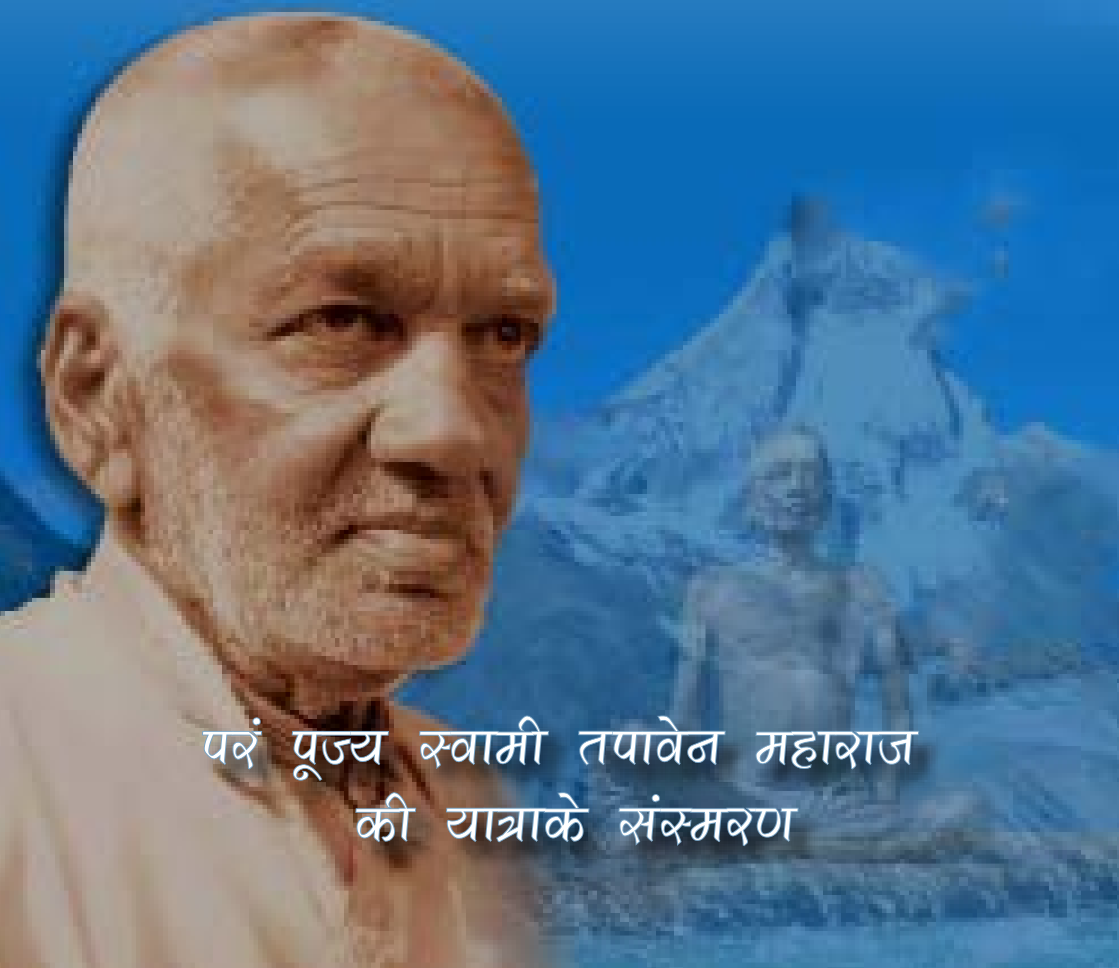

परं पूज्य स्वामी तपावेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवन्मुक्त

लक्ष्मीवन से दुस्तर प्रस्तर मार्ग से चार पांच मील उपर जाने पर वहां ‘चक्रतीर्थ’ नामक एक छोटा सा मंजुल सरोवर आ जाता है। यह सरोवर चक्राकार है। वहां से फिर दो–एक मील उपर की ओर ‘सत्यपथ’ नामक प्रसिद्ध सरोवर है तथा उससे भी उपर सूर्यकुंड, चन्द्रकुंड आदि कई कुण्ड है। ये सभी सरोवर तथा कुण्ड एक ऐसे मैदान में है जो ब्रह्म के समान स्वयं प्रकाशमान है, धवल धवल हिमसंहतियों से आच्छन्न है, तेईस हजार फुट से भी अधिक उंचाई पर पहाडों के बीच विशाल, बरफीली चट्टानों से ढका हुआ तथा अति मनोहारी है। इन कुण्डों से और भी कुछ दूर बरफीली चट्टानों से होकर आगे बढें तो वहां ‘स्वर्गरोहिणी’ नाम का इतिहास प्रसिद्ध स्थान आ जाता है।

महाप्रस्थान का व्रत लिये और शारीरिक चिंता को छोडकर आगे ही आगे कदम बढ़ानेवाले परमधीर पांडुपुत्रों ने तो उधर अनायास ही अधिरोहण किया होगा इसमे कोई सन्देह नहीं, किन्तु साधारण लोगों के लिए इन अति भयानक तथा कभी न पिघलने वाली हिमशिलाओं से होकर असह्य शीत को सहते उपर चढ़ते जाना अति दुर्गम है। प्राचीन काल में युधिष्ठिर के सदृश स्वर्ग की इच्छा रखनेवाले लोगों का इस दुर्गम प्रदेश में घूमते हुए शरीर त्याग करना तो निःसदेह साधारण बात थी। इसी स्थान से युधिष्ठिरने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया था, तभी तो यह स्थान स्वर्गारोहिण ी कहलाता है। स्वर्गारोहिणी स्वर्ग पर जाने का सोपान है। इस स्थान का दर्शन करना अत्यधिक पुण्यप्रद है, वहां जाकर मरना स्वर्गप्रदायक है, आदि पूर्वजों की इन पुरानी बातों को आज का शिक्षितवर्ग निरर्थक कल्पना और जल्पनामात्र कहकर टाल देता है, किन्तु इस दिव्य स्थान के अनन्य सौन्दर्य का निषेध तो वह भी नही कर सकता। जो तथ्य प्रत्यक्ष है उसका निषेध तो वह भी नहीं कर सकता। जो तथ्य प्रत्यक्ष है उसका निषेध तर्ककुशलता अथवा अश्रद्धा भला कैसे कर सकती

है? इसी स्थान पर जब सूर्य की किरणें पडती है तो चारों ओर पर्वत खण्ड रजतगिरि अथवा कनकगिरि के समान प्रशोभित हो जाते है। जब पर्वत शिखरों से हिमखण्ड गिरते हैं तो ऐसी आवाजे आने लगती है मानो तोपों से गोला दाग दिया गया हो।

इस प्रकार यह स्थान श्रद्धालु, अश्रद्धालु दोनो का मन हठात् आकृष्ट कर लेता है।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री कैकेयी चरित्र

– 03 –

प्रनवउं परिजन सहित विदेहू।
जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।।

श्री कैकेयी चरित्र

चार पुत्रों के जन्म के पश्चात् रानियों का पारस्परिक सौहार्द क्रमशः बढ़ता ही गया। इसमें मुख्य हेतु कौशल्या और सुमित्रा की समर्पणवृत्ति ही थी। जहां कौशल्या राघवेन्द्र को निरन्तर यही बताती रही हों कि तुम्हारी मां तो कैकेयी हैं मैं नहीं, वहां वैमत्य का कारण ही क्या हो सकता था?

श्रीरामभद्र भी निरन्तर कैकेयी अम्बा को मां कहकर पुकारते हैं। उन्हें सर्वदा सम्मान देते रहते हैं, स्वभावतः वे कैकेयी अम्बा को अपने संकोची पुत्र भरत की तुलना में अधिक प्रिय प्रतीत होने लगे। कैकेयी के इस व्यवहार से उनकी उदारता की ख्याति और भी अधिक बढ़ने लगी। कैकेयी ने बड़ी उत्सुकतापूर्वक राम को युवराज पद पर अभिषिक्त देखने की अभिलाषा प्रकट की। ऐसा लगा कि महाराज कैकय ने वचन लेकर

श्री कैकेयी चरित्र

उत्तराधिकार की जो समस्या उत्पन्न की थी कैकेयी ने उस अधिकार का परित्याग करके समस्या का निराकरण कर दिया है। किन्तु समय आने पर यह धारणा सत्य सिद्ध नहीं हुई।

मन्थरा को राघवेन्द्र के युवराज पद पर अभिषिक्त किए जाने की योजना का समाचार सुनकर बड़ा ही तीव्र आघात लगता है और वह समग्र मन, प्राण से इस योजना को विनष्ट करने में संलग्न हो जाती है। यद्यपि प्रारम्भ में इस समाचार को सुनकर महारानी कैकेयी जिन शब्दों में प्रसन्नता प्रकट करती हैं वे ऐसे असाधारण उदार शब्द थे कि मन्थरा को छोड़कर यदि कोई दूसरा पात्र होता तो निराश होकर षड़यन्त्र की भावना से विरत हो जाता। कैकेयी ने उत्साह-भरे स्वर में कहा था कि यदि रामराज्य का समाचार सही है तो तुम्हें मन के संकल्प के अनुकूल वस्तु प्राप्त होगी। एक बार तो यह वाक्य सुनकर मन्थरा का हृदय भी दहल उठा था। किन्तु इतना होने पर भी यदि वह निराश नहीं होती है तो इसका कारण यही था कि वह कैकेयी की अन्तर्मन की दुर्बलताओं से भली भांति परिचित थी। इसीलिए वह आघात को झेलकर पुनः प्रयास में संलग्न हो जाती है। कैकेयी की अहंजन्य उदारता से वह परिचित है। अहं प्रधान व्यक्ति की

आसक्ति का केन्द्र कान है। कर्णेन्द्रिय के माध्यम से ही प्रशंसा का रसपान करता हुआ वह अहं की तृप्ति का अनुभव करता है। मानस में इसीलिए कुम्भकर्ण (जिसका कान घड़े की तरह हो) को अहं के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः अहंकारी जहां कान के माध्यम से प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होता है, वहीं कर्णेन्द्रिय के माध्यम से प्रतिकूल वाक्य सुनकर उसे आघात भी कम नहीं लगता। मन्थरा ने कैकेयी की अहंकार से उत्पन्न कर्णेन्द्रिय की दुर्बलता का लाभ उठाया। वार्तालाप में कैकेयी के द्वारा स्वयं के औदार्य की प्रशंसा करने के लिए जो कुछ कहा गया, वही उलटकर मन्थरा का अस्त्र बन गया। कैकेयी ने बड़े ही उछाह-भरे स्वर में मन्थरा को यह बताया कि राम यद्यपि सभी माताओं को बराबर सम्मान देते हैं किन्तु मेरे प्रति उनका स्नेह और सद्भाव सर्वाधिक है। मैंनें परीक्षा लेकर इसका अनुभव कर लिया है। इतना ही नहीं मैं तो राम के गुणों से इतनी प्रभावित हूं कि मैं ब्रह्मा से यही वरदान मांगती हूं कि अगले जन्म में राम और सीता मेरे पुत्र और वधू बनें।

कथा / प्रसंग

समर्पण की पराकाष्ठा – भामती

समर्पण की पराकाष्ठा – भामती

वाचस्पति मिश्र बहुत विद्वान्, षड्दर्शनों के ज्ञाता, वेदान्तज्ञान में परं निष्ठ आचार्य थे। एक समय वे वेदव्यासजी द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र पर टीका लिख रहे थे। उसी दौरान उनका विवाह एक भामति नामक सुशील और संस्कारी कन्या से विवाह हुआ। विवाह होते से ही वाचस्पति पुनः अपने लेखनकार्य में झूट गएं। दिन रात वे ब्रह्मसूत्र पर चिन्तन करके उस पर भाष्य लिखने में रत थे।

भामती प्रतिदिन उनसे पूर्व उठ़कर अपने पतिदेव के कार्य की सब तैयारी कर देती थी। उन्हें समय से भोजन आदि देती थी। संध्या समय में अन्धेरा होने के पूर्व ही दीपक जलाकर उनके समक्ष रख देती थी, जिससे कि उनके इस कार्य में किसी प्रकार का व्यवध ाान न हो। वाचस्पतिजी को इस कार्य को पूरा करने में कई वर्ष लग

समर्पण की पराकाष्ठा – भामती

गएं। इस कार्य में पूर्णतः समर्पित होकर वे अपना कार्य करते रहें और उनके विवाह के सम्बन्ध में, उनकी पत्नी आदि के सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी स्मरण नहीं रहा। इस प्रकार वर्षों बीत गएं।

अब यह लेखन कार्य जब समाप्ति की ओर था। ऐसे में एक शाम को भामति दीपक प्रज्जवलित करके उनके समक्ष रखने आई। तब अचानक उनका ध्यान भामति की ओर गया और उनसे पूछ लिया कि 'हे देवी! आप कौन है?' भामति ने मुस्कुराते हुए कहा कि 'स्वामी! मैं आप ही की पत्नी भामति हूं।' अपने विवाह की घटना आदि का भामति ने उन्हें स्मरण कराया। यह स्मरण होते ही वे अत्यन्त दुःखी हुएं। और कहा कि इतने वर्षों तक तुम हमारी बगैर अपेक्षा के सेवा करती रही। समय समय पर हमारी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करती रही और हमने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। तुम्हारी सेवा और समर्पण की वजह से ही यह ब्रह्मसूत्र के भाष्य का लेखन कार्य सम्भव हुआ है। अतः यह टीका भामति के नाम से ही जानी जाएगी।

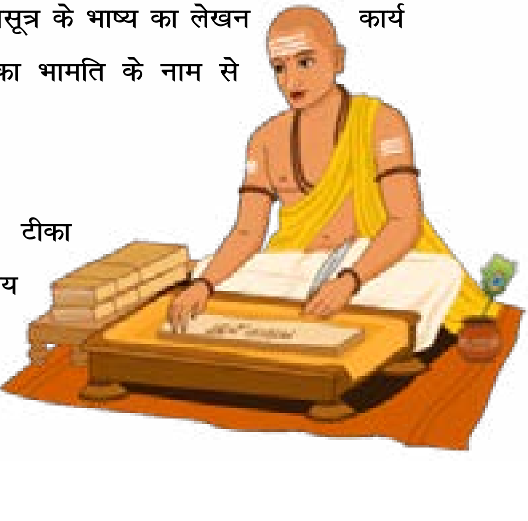

आज भी यह प्रसिद्ध भामति टीका विद्वानों में अत्यन्त आदरणीय है। किन्तु बहुत कम लोग उसे

समर्पण की पराकाष्ठा – भामती

वाचस्पति मिश्र द्वारा रचित बताते हैं। अधिकतर इसके टीकाकार वाचस्पति मिश्र भी भामतिकार के नाम से ही जाने जाते हैं।

जहां गृहस्थजीवन में जहां इस प्रकार के पति-पत्नी के अन्योन्य अपेक्षा से रहित सम्बन्ध और अपने कर्म में पूर्ण समर्पण होता है, वही गृहस्थ जीवन धन्य होता है।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम / मिशन समाचार

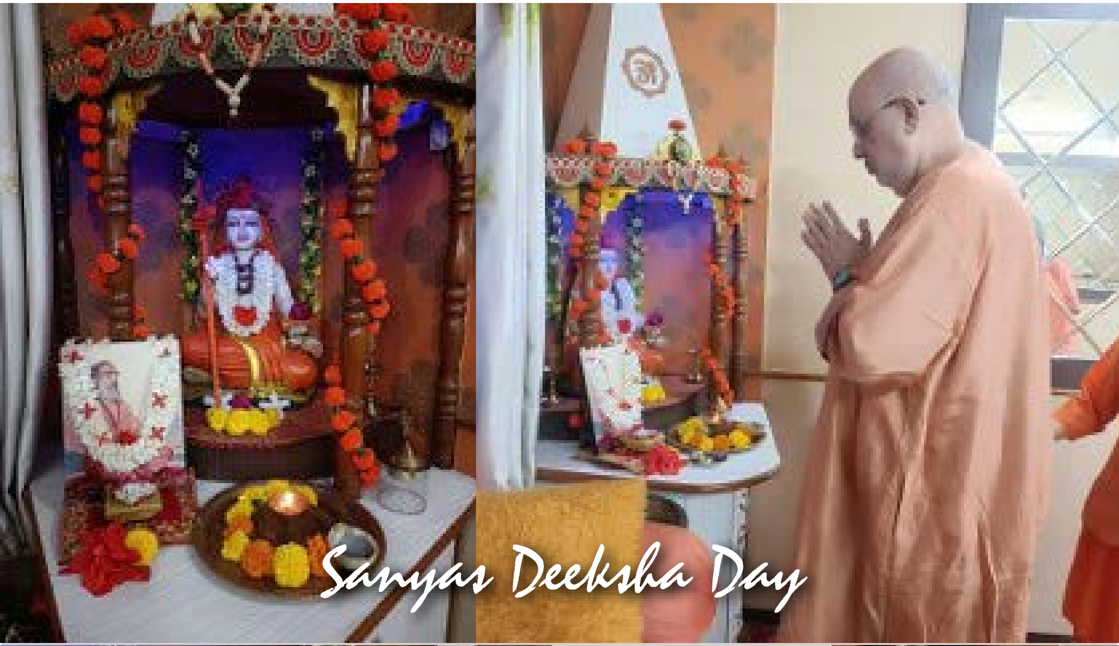

Sanyas Deeksha Day

'Samapan' of Online Gyan Yagna

आश्रम / मिशन समाचार

Poojya Swamini Amitananda

Subject: Tattva-Bodha

Online Vedanta Classes

Poojya Swamini Samatananda

Subject: Gita Chapter-7

आश्रम / मिशन समाचार

Online Ekadashi Podcast

Poojya Swamini Poornanandaji

आश्रम / मिशन समाचार

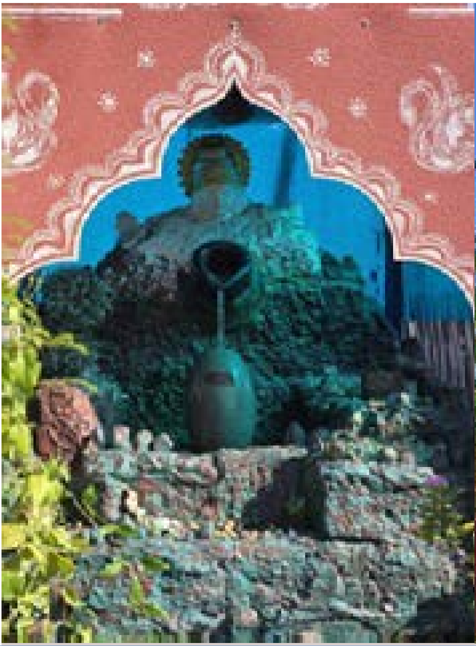

Annual Dasshera Puja

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

Om Namah Shivaya

Shiv-Puja by Angad Kapoor

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

Decorations reveal Devotion

आश्रम / मिशन समाचार

Laxmi Pujan on Diwali

@ Ashram, Indore

आश्रम / मिशन समाचार

Celebrating Dipawali

Festival of Lights

आश्रम / मिशन समाचार

@ Ashram, Indore

आश्रम / मिशन समाचार

Dipawali Blessings

@ Ashram, Indore

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

Completion of Kitchen Renovation

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

Ahilya Mata Gaushala

आश्रम / मिशन समाचार

Renovated & refurbished Ashram Kitchen

आश्रम / मिशन समाचार

श्रीमद् भगवद् गीता

(शांकर भाष्य समेत) नित्य कक्षाएं

प्रतिदिन प्रातः 7.30 बजे से (मंगल से शनिवार)

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

आश्रम / मिशन समाचार

ओनलाईन सत्संग

प्रति शनिवार, सायं 4 बजे से

on Google Meet

आदि शंकराचार्य विरचित तत्त्वबोध

पूज्य स्वामिनी अमितानन्दजी

ओनलाईन सत्संग

प्रति रविवार, सायं 4 बजे से

on Google Meet

श्लोकपाठ / ध्यान / सत्संग

पूज्य स्वामिनी समतानन्दजी

एकादशी सत्संग

प्रति एकादशी को

on YouTube Channel

पूज्य स्वामिनी पूर्णानन्दजी द्वारा

HOLISTIC LIVING
CAMP ON TH DEC

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

(☝ Click here)

GITA / UPANISHAD/ PRAKARAN GRANTHAS

SUNDARKAND / HANUMAN CHALISA

SHIV MAHIMNA STOTRAM / CHANTING

MORAL STORIES ETC

Audio Pravachans (☜ Click here)

GITA / UPANISHAD/ PRAKARAN GRANTHAS/

SUNDARKAND / HANUMAN CHALISA

SHIV MAHIMNA STOTRAM / CHANTING

MORAL STORIES ETC

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - Nov '25

Vedanta Piyush - Oct '25

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Join us on Facebook :
Vedanta & Dharma Shastra Group

Subscribe to our WhatsApp Channel
Vedanta Ashram Channel

Published by:
Vedanta Ashram, Indore